बेगम रुकैया सखावत हुसैन: जीवन, संघर्ष एवं सामाजिक योगदान

डॉ. प्रत्युष प्रशांत

सेंटर फॉर वीमेंस स्टडीज,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

सारांश

भारतीय समाज में मुस्लिम महिलाओं या बच्चियों के शिक्षा ग्रहण करना चाहे वह कुलीन परिवार से ही क्यों न आती हो, औपनिवेशिक कालखंड में न हजम होने वाली बात थी। एक समाजिक सच्चाई यह भी थी मुस्लिम समाज में उस दौर में पुरुषों के पास भी स्कूली तालिम बहुत कम थी, वहां दीन-मजहबी तामिल पर अधिक जोर था। कुरान के आयत बोलने के बाद आमदनामा(क्रिया के प्रयोग से जुड़ी किताब), सादी, गुलिस्तान और बुस्तान जैसी किताबों ही आली तालीम के बाद विनम्र बनने पर अधिक जोर था। इस महौल में बेगम रुकैया का मुस्लिम महिलाओं के लिए तालिम के लिए आगे आना अंधेरे में चिराग जलना ने के बराबर था जिससे उनका भी जीवन रोशन हुआ और मुस्लिम समाज के लड़कियों का भी।

बीज-शब्द: शिक्षा, मुस्लिम महिलाएं, महिलाएं, स्त्री-पुरुष, असमानता।

प्रस्तावना

औपनिवेशिक दौर में भारतीय समाज में कमोबेश हर जातीय-धार्मिक समुदाय में महिलाओं के शिक्षा के सवाल पर कमोबेश एक ही स्थिति थी। 19वीं सदी का आरंभ वह देशकाल है, जिससे गुजरने पर पता चलता है कि उस दौर में तमाम अंतर्विरोधों के बाद भी स्त्रियों में पढ़ने-लिखने की गहरी चाह थी। कई महिलाओं के आत्मस्वीकृति और आत्मकथाओं के माध्यम से यह बात उभर कर सामने आते हैं कि कुछ महिलाएं अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए समय चुराकर पढ़ना-लिखना सीख रही थी। कुछ महिलाएं पति या भाई के सहयोग से पढ़ना-लिखना सीख रही थी तो कई महिलाओं की इच्छा होने के बाद भी कोई विकल्प मौजूद नहीं था। कई महिलाएं अपनी शिक्षित होने की उपलब्धि को छुपाती भी थी क्योंकि बहुसंख्यक परिवार में यह मान्यता प्रचलित थी कि पढ़ी-लिखी लड़कियां अपने विवाह के बाद विधवा हो जाती हैं या अक्षरों की

जानकारी महिलाओं को कुटिल बना देता है। इन स्थितियों में भी महिलाओं की पढ़ने-लिखने की इच्छा और शिक्षा के लिए उनका संघर्ष यह बताता है कि शिक्षा उनके लिए खुद को अभिव्यक्त करने का वह माध्यम भर ही नहीं था जो उनको सामाजिक भूमिका निभाने में या यथास्थिति से मुक्त करा सकती थी। किंतु, विपरीत हालातों में ही समाज में कुछ विरले कार्य हुए हैं जिसमें भविष्य के नये बीज अंकुरित होते हैं।

उस दौर में तमाम मानवतावादी प्रयासों और मिशनरियों के सहयोग के बाद भी महिलाओं के पढ़ने-लिखने की चाह सामाजिक मान-मर्यादा के सामने धक्के खा रहा था। महिलाओं के साथ सामाजिक यथास्थिति कुछ इस तरह की थी कि प्रायः महिलाएं ही महिलाओं को शिक्षा न मिले इस तरह के प्रतिबंधों को समर्थन देती थी। इसका कारण यह भी था कि उनका अस्तित्व भी इस यथास्थिति को बरकरार रखने पर ही टिका हुआ था। इस स्थिति में महिलाओं के पास कोई विकल्प इच्छा रहते हुए

भी मौजूद नहीं था। वह या तो अपने इच्छा शक्ति परिवार के उदार पुरुष या उन जीवनसाथी के इच्छा पर निर्भर थी जो स्वयं पढ़े-लिखे होने के कारण अनपढ़-अशिक्षित जीवनसाथी नहीं चाहते थे। उन्नीसवीं सदी के मध्य आते-आते स्थितियों में बड़ा परिवर्तन दिखना शुरू हुआ जब कुछ आर्थिक सुविधाएं दी जाने लगी और बड़ी संख्या में महिलाओं के लिए स्कूल खुलने शुरू हुए। इनमें से कई तो स्वयं महिलाओं ने घर में ही कुछ लड़कियों के साथ शुरू किया जो आगे चलकर लड़कियों के लिए शिक्षा का बड़े केंद्र बनकर उभरे।

बेगम रुकैया सखावत हुसैन ने जब मुस्लिम लड़कियों को शिक्षित करने के लिए स्कूल खोला। तब तक वह शिक्षित होने की ताकत को समझ चुकी थी। वह स्वयं को शिक्षित करने के लिए कई संघर्षों से गुजरी थी। प्रस्तुत लेख बेगम रुकैया के व्यक्तिगत संघर्ष, लड़कियों को शिक्षित करने के लिए उनके प्रयास और उनके लेखनी में स्त्री-पुरुष असमानता के कारण को अभिव्यक्त करने के तरीकों को समझने का छोटा सा प्रयास है। जो उनके महान-कर्म के सामने रोशनी का दिया जलाने के बराबर है। उनसे पूर्व मुस्लिम महिलाओं के लिए शिक्षा उनके समाज सांस्कृतिक निर्माण की प्रक्रिया से अधिक मेल खाते थे। मुस्लिम महिलाओं के लिए शिक्षा की भागीदारी इसलिए भी सीमित थी क्योंकि छोटी उम्र से ही उन्हें पर्दे में रखा जाता था। इस स्थिति में कुछ महिलाओं का शिक्षित होना एक अपवाद ही रहा होगा।

ऐसे माहौल में मुस्लिम महिलाओं के लिए बेगम रुकैया एक ऐसी उम्मीद का नाम है जिसे आसानी से भुलाया नहीं जा सकता है। बेगम रुकैया उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में के बंगाली मुस्लिम समाज में महिलाओं के विरुद्ध चल रहे परंपराओं और नियम-कायदों की निंदा की। इस देशकाल में हिंदू महिलाओं की तुलना में मुस्लिम महिलाओं की स्थिति बहुत बेहतर नहीं थी। जिसकी सटीक जानकारी कई महिलाओं के आत्मकथाओं से मिलती है। इन स्थितियों में बेगम रुकैया सखावत हुसैन औपनिवेशिक बंगाल में मुस्लिम समाज की महिलाओं के लिए पितृसत्तात्मक समाज की आलोचना की प्रमुख हस्ताक्षर के रूप में नजर आती है। जिन्होंने मुस्लिम महिलाओं को शिक्षा के माध्यम से अपने अधिकारों और जिम्मेदारियों के प्रति जागृत करने का प्रयास किया।

प्रारंभिक जीवन

9 दिसंबर 1880 में रंगपुर जिले के (जो अब बांग्लादेश में है) पेराबाउड में एक धनाढ्य जमींदार परिवार में बेगम रुकैया का जन्म हुआ था। पिता ज़हीरुद्दीन अबू अली हैदर साबेर जो अरबी, फारसी, पश्तो, उर्दू और अंग्रेजी के अच्छी जानकारी रखते थे, एक रूढ़िवादी व्यक्ति थे। चार पत्नियों, नौ बेटों और छह बेटियों के उनके परिवार में स्त्रियों को पर्दे के नियम का कड़ाई से पालन करना होता था। रुकैया, पिता ज़हीरुद्दीन अबू अली हैदर साबेर की पहली पत्नी राहतउन्निसा साबेर चौधरानी की दो बेटे और तीन बेटियों में दूसरे स्थान पर थी। रुकैया के परिवार के उनके खुद के ब्यौरे के मुताबिक, “उनके परिवार में स्त्रियों को अच्छा खाना, अच्छा पहनना, गहने जेवर खरीदने और पहनने की आजादी थी पर घर के चारदीवारी के अंदर।”¹ अपने बचपन की घटनाओं के बारे में रुकैया लिखती है कि – “उनके घर पर कोई व्यक्ति मिलने के लिए आ जाता तब छोटी बालिकाओं को भी दौड़ाकर छुप जाना पड़ता था, कभी रसोई में, कभी बड़ी टोकरी के पीछे, कभी बिस्तर के नीचे, भले ही आने वाला आगंतुक स्त्री ही क्यों न हो?”² वह इसलिए क्योंकि परिवार की महिलाओं और लड़कियों को पर्दे नियमों को सख्ती से पालन करने की हिदायत थी। यह मान्यता थी कि पर्दे नियम-कायदों के उल्लंघन से परिवार की इज्जत डूब जायेगी।

उस दौर में मुस्लिम परिवार में लड़कियों को पढ़ाने की कोई व्यवस्था नहीं थी, लड़कियों को पढ़ाने पर काफी विरोध का सामना करना पड़ता था। छोटी उम्र की लड़कियां अपने-अपने भाईयों के साथ किसी बड़े उम्र के उस्ताद से पवित्र कुरान पढ़ सकती थी और बड़ी उम्र की लड़कियां उस्तानियों से पढ़ती थी जिनके पास साहित्यिक कौशल के सीमित कोष थे। रुकैया के पिता बेटियों को शिक्षा देने के पक्ष में थे, परंतु समाज की बंदिशें उनके साथ थी। इसलिए अपनी बेटियों को पढ़ाने की कोई योजना उनके पास नहीं थी। हैदर साबेर ने अपने बेटों को पढ़ाई की पूरी व्यवस्था कर रखी थी। रुकैया की बहनें, अपने बड़े भाई से पढ़ा करती थी। बेगम रुकैया द्वारा पेश उनके खुद

के ब्यौरे के अनुसार, वे खुशकिस्मत थीं कि स्कूल नहीं जाने के बाद भी, उन्हें बड़े भाई इब्राहिम साबेर ने पढ़ने-लिखने में उनकी रुचि देकर उनमें शिक्षा के प्रति दिलचस्पी बढ़ाई।³ इब्राहिम साबेर, अपने पिता ज़हीरुद्दीन साबेर के विचारों के विपरीत थे। उन्होंने कलकत्ता के सेंट जेवीयर कालेज से अपनी पढ़ाई की थी और सर सैयद अहमद के विचारों से प्रभावित थे और हालांकि मुस्लिम महिलाओं के पढ़ने-लिखने के पक्ष में थे (सर सैयद अहमद मुस्लिम महिलाओं के शिक्षा के पक्ष में नहीं थे)। बाद के दिनों में इब्राहिम साबेर अंग्रेजी हुकूमत में सरकारी अधिकारी भी हुए। इब्राहिम साबेर ने अपनी बहनों को पढ़ने लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। रुकैया अपनी आत्मकथा 'मोतीचूर' में लिखती है कि उनके पिता बंगला और अंग्रेजी सिखने के पक्ष में नहीं थे। उस दौर में उर्दू भद्र मुसलमानों की जवान हुआ करती थी और बंगला आम लोगों की बोल-चाल की भाषा थी। बंगला बोलना और पढ़ने में उर्दू जवान के लोगों को कोफियत महसूस होती थी। यही स्थिति अंग्रेजी भाषा के साथ भी थी। इस माहौल में इब्राहिम साबेर ने अपनी बहनों को अंग्रेजी के प्रारंभिक पाठ पिता से छुपाकर पढ़ाना शुरू किया। इसके लिए इब्राहिम साबेर और उनकी बहन रात होने का इंतजार करती थी, रात के भोजन के बाद जब उनके पिता सोने के लिए चले जाते, तब वो अपनी बहन और बड़े भाई से रात के सन्नाटे में, मोमबत्ती की रोशनी में अंग्रेजी पढ़ना सिखती थी। रुकैया की बड़ी बहन करीमुनिसां में लिखने पढ़ने की इतनी अधिक इच्छा थी कि उसने अपने आप ही बंगला भाषा तालीम ली और उसे सीखने में रुकैया की सहायता की। करीमुनिसां अधिक खुशकिस्मत नहीं रही। जब घरवालों को पता चला था कि करीमुनिसां ने अंग्रेजी पढ़ना सीख लिया है, तब उन्हें शादी तय होने तक नानी के सतर्क निरीक्षण में रख दिया गया था। करीमुनिसां की शादी चौदह साल के उम्र में अब्दुल हाफिस गजनवी से हुई। रुकैया बचपन में अपनी बहन करीमुनिसां के बेहद करीब थी। करीमुनिसां के घरेलू जीवन पर रुकैया ने कई कविताएं भी लिखी जो घरेलू जीवन की समस्याओं को अभिव्यक्त करती हैं।

बेगम रुकैया की शादी 1896 में कर दी गई जब वो सिर्फ सोलह वर्ष की थी और वो बेगम रुकैया सखावत हुसैन हो गई। रुकैया के पति सैयद सखावत हुसैन विधुर थे और पहली पत्नी से उन्हें एक बेटी थी। सखावत हुसैन ने पश्चिम में पढ़ाई की थी और वो स्वयं तरक्की पसंद, उदार ख्याल एवं जहीन इंसान थे। वे बिहार में भागलपुर जिले अंग्रेज सरकार के बड़े ओहदे पर कार्यरत थे। वे अपनी नौजवान पत्नी रुकैया को सहचर के रूप में देखते थे। उन्होंने देखा कि रुकैया के भीतर पढ़ने-लिखने की गहरी इच्छा है, उन्होंने शादी के तुरंत बाद रुकैया को अंग्रेजी की शिक्षा देना शुरू कर दिया था और रुकैया से बंगला भाषा सीखाना शुरू किया। पढ़ाई-लिखाई और तरक्कीपसंद माहौल ने रुकैया के अंदर महिलाओं और खासतौर से मुसलमान महिलाओं को बराबरी का हक दिलाने के लिए संघर्ष की जमीन तैयार कर दी। रुकैया का विवाहित जीवन अधिक समय तक नहीं चला, उम्र के साथ सखावत हुसैन का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और पत्नी के समर्पण भाव से सेवा करने के बाद भी कोई लाभ नहीं हुआ। 1909 में रुकैया के 29 वर्ष में ही सखावत हुसैन दिवंगत हो गये। सखावत हुसैन जानते थे कि रुकैया मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा के लिए कुछ करना चाहती थी, इसलिए उन्होंने उनके लिए दस हजार रुपये छोड़ गये। 13 वर्ष के विवाहित जीवन में प्रारंभ में ही दो बच्चों के मौत के बाद भी उदासी और अकेलेपन के माहौल में रुकैया ने अपने जीवन पर नियंत्रण रखा और पति के छोड़े गये धन से उनके नाम पर एक स्कूल शुरू करने का निश्चय किया। जो सखावत मैमोरियल गर्ल्स स्कूल के नाम से भागलपुर में शुरू हुआ। सौतेली बेटी और दामाद के संपत्ति विवाद से तंग आकर उन्होंने पति का घर छोड़ दिया और कलकत्ता में अलीउल्लाह गली में छोटे से घर में केवल ग्यारह छात्राओं के साथ एक स्कूल शुरू किया, जो बाद में सर्कुलर रोड में स्थांतरित हुआ। मुस्लिम महिलाओं के लिए स्कूल का संचालन बेगम रुकैया के जीवन का निर्णायक मोड़ था।

शिक्षा के क्षेत्र में योगदान

मुस्लिम महिलाओं के शिक्षा के लिए स्कूल खोलने का बेगम रुकैया का यह प्रयास औपनिवेशिक भारत का पहला प्रयास नहीं था। परंतु, बेगम रुकैया जिस

सुव्यवस्थित योजना और साहसिक प्रयासों से इस स्कूल का संचालन कर रही थी। वह बेगम रुकैया को महिला शिक्षा के क्षेत्र में आगे के पंक्ति में खड़ा कर देता है। खासकर जब वहां उर्दू के साथ-साथ पर्सियन, अरबी, बंगाली और अंग्रेजी भाषा की शिक्षा दी जा रही थी। जबकि शिक्षण का माध्यम उर्दू था। बेगम रुकैया इस्लामी संप्रदाय के कट्टरपंथी भावनाओं के प्रति पूरी तरह संवेदनशील थी फिर भी मुसलमान लड़कियों को शिक्षा देने के कारण उन्हें समाज के एक वर्ग से आलोचना को बराबर झेलना पड़ा। मुस्लिम लड़कियों के लिए शिक्षा के अभियान पर उनके ऊपर ईसाईपरस्त और अंग्रेजपरस्त होने की आलोचना का शिकार होना पड़ा, लेकिन उनका स्कूल चलता रहा। उनके स्कूल के संचालन में शिक्षित मुसलमान उनकी मदद के लिए आगे आये जिससे बेगम रुकैया के स्कूल का कार्य मिशनरी भावना से जारी रखा। उनके स्कूल में मध्यवर्गीय और धनायुक्त मुसलमान परिवारों की लड़कियां भी पढ़ती रही। स्त्री शिक्षा पर बेगम रुकैया के विचारों ने इस्लामी संस्कृति को खतरे में डाल देगी उनकी इस तकरीर ने लोगों पर अनुकूल व उत्साहपूर्वक प्रभाव छोड़ा था। बाद के दिनों में उनका स्कूल जूनियर स्कूल बना और उनकी छात्राएं दसवीं की परीक्षा में भी बैठी। उनका यह स्कूल सखावत मैमोरियल गवर्नमेंट गर्ल्स स्कूल के नाम से लार्ड सिन्हा रोड पर, कलकत्ता में आज भी चल रहा है।

औपनिवेशिक भारत में महिलाओं के शिक्षा का इतिहास हिंदू और मुस्लिम महिलाओं के लिए एक ही तरह का रहा है। उसमें मूलभूत अंतर बस इतना ही था कि हिंदू महिलाओं के लिए स्कूल पहले शुरू हो चुके थे। परंतु, उनकी समस्याएं, उनके अवरोध और उनका विमर्श एक ही तरह का था। रुकैया इन तमाम विसंगतियों से अवगत थी। इसलिए वो इस्लामी संप्रदाय की कट्टरपंथी भावनाओं के प्रति पूरी तरह संवेदनशील थी इसलिए लड़कियों को स्कूल लाने और वापस भेजने के दौरान कठोरतम नियमों का पालन उनकी देख-रेख में होता था। जब लड़कियां गर्मी में बंद बग़्ची में बैठने के वजह से मिचली करने लगती या बेहोश होने लगती, तब नियमों में थोड़ा संशोधन किया जाता था और बंद जालों के जगह पर्दे लगा दिए जाते थे। स्कूल के अंदर भी लड़कियां पर्दे के नियम का कड़ाई से पालन करती थी। स्कूल के अंदर

लड़कियों को अपने सर को ढंके रहना पड़ता था।⁴ उन्नीसवीं सदी के देशकाल में सर ढंके वाले कपड़े शालीनता और आधुनिकता दोनों के ही प्रति सम्मान का एक ऐसा संकेत था जो उस दौर में दायरे में रहने वाली महिलाओं के लिए क्रांतिकारी कदम था। स्कूल को सही तरीके से चलाने के लिए यह बहुत जरूरी था कि स्कूल में भी नियमों का सख्ती से पालन हो। उनके स्कूल के पाठ्यक्रम में साक्षरता तथा हस्तकला, गृहविज्ञान और बागवानी जैसे व्यावसायिक विषयों पर अधिक जोर था। इनमें शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रशिक्षण भी शामिल था। लड़कियों के पाठ्यक्रम के शैक्षणिक कार्यक्रम रुकैया बेगम के लेखकीय रचनाओं से बिल्कुल मेल नहीं खाते थे। उन्होंने स्कूल के पाठ्यक्रम में उन नियमों से खुद को जोड़ कर रखा, जो महिलाओं को एक दायरे तक ही सीमित करते थे। वह इस्लामी संप्रदाय की कट्टरपंथी भावनाओं के टक्कर लेकर मुस्लिम लड़कियों के शिक्षा के रास्ते को बंद नहीं करना चाहती थी। मुस्लिम महिलाओं के शिक्षा के बारे अपने नजरिये के बारे में वो लिखती है कि - हमारे मस्तिष्क में ज्ञान का प्रवेश न होना वैसा ही है जैसे हमारे शयनकक्ष में सूर्य का प्रवेश न कर पाना। जब हमारे पति पृथ्वी से सूर्य और सितारों की दूरी नापते हैं तब उनकी पत्नियां तकिये की लंबाई-चौड़ाई माप लेती हैं।⁵ बेगम रुकैया का मानना था शिक्षा मुस्लिम महिलाओं के लिए इसलिए आवश्यक है क्योंकि यह महिलाओं को सम्मानपूर्ण जीवन का रास्ता खोल सकता था। महिलाओं के शिक्षा के माध्यम से बेगम रुकैया उन स्थापित मान्यताओं को भी खारिज करना चाहती थी कि शिक्षा महिलाओं के पारिवारिक जीवन में अनिश्चिता लाता है। मसलन, शिक्षित महिलाओं के पति कि असमय मृत्यु हो जाती है या शिक्षित महिलाएं कुटिल और विवेकहीन होती हैं। इसलिए मुस्लिम महिलाओं के लिए अपने उदार विचारों को उन्होंने अपने कई लेखों में अभिव्यक्त किया और निजी और सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के लिए मौजूद नियम-कायदों और पाबंदियों की आलोचना उन्होंने कलम के सहारे अपने लेखों के माध्यम से किया। रुकैया का मानना था कि मुस्लिम महिलाओं के शिक्षा के रास्ते में दो बड़ी बाधाएं हैं। पहला, सख्त पर्दा कानून जो महिलाओं को घर से बाहर शिक्षा के अवसरों को सीमित कर देता है और दूसरा है कम उम्र में

लड़कियों के शादी का रिवाज।⁶ महिलाओं के शिक्षा के बारे में वो बताती है कि – मैं उस तरह की शिक्षा की बात कर रही जो महिलाओं को शारीरिक और मानसिक रूप से समान नागरिक के रूप में प्राप्त हो सके। महिलाओं को यह समझना होगा कि वो केवल अच्छे कपड़े और महंगे जेवरात के जरूरत के लिए नहीं है।⁷ हमारे देश में महिलाओं के लिए कुछ विशेष कार्य ही निर्धारित है उनका पूरा जीवन उनके पति के लिए समर्पित होने के लिए नहीं है। उन्हें अपने उत्कर्ष के लिए दूसरों पर अपनी निर्भरता खत्म करनी चाहिए। शिक्षा ही वह माध्यम है जो महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बना सकता है। अगर महिलाएं शिक्षित होने के बाद पारिवारिक जीवन में जाती है तो शिक्षा उनके अंदर आत्मसम्मान की भावना का विकास भी करता है।

लेखकीय कर्म

रुकैया ने शादी के कुछ साल बाद ही स्त्रियों के हालातों पर अनेक लेख लिख डाले थे जो प्रकाशित भी हुए। उनकी पहला लेख 'पिपासा' 1902 में 'नवप्रभा' में ज्ञानेंद्र लाल राय के संपादन में प्रकाशित हुआ जब रुकैया 22 वर्ष की थी। इसके बाद उनका लेख 'महिला' में गिरीशचंद्र सेन के संपादन में 'गुलामी के प्रतीक आभूषण' प्रकाशित हुआ जो काफी चर्चित भी हुआ। उनके कई लेख 'अर्दागी', 'गृह', 'बुर्का', 'सुगृहणी' भी देखने को मिलते हैं जो 'नवनूर', 'नवप्रभा' और 'महिला' पत्रों में प्रकाशित हुआ। इन लेखों में बेगम रुकैया ने स्त्रियों के असमान विकास, आर्थिक साधनों से महिलाओं की दूरी, पुरुष प्रतिष्ठा के नाम पर महिलाओं के सीमाबद्ध दायरे पर अपना लेखन किया। अपने लेखों में उन्होंने उत्पीड़न के खिलाफ स्त्रियों में जागरूकता में शिक्षा की भूमिका की जरूरत को केंद्रीय विषय बनाया था। उनकी प्रमुख रचनाएं सुलतानाज ड्रीम (1908, अंग्रेजी में लघु उपन्यास), मोतीचूर, खण्ड- 1 और 2 (1904 और 1922), पद्मराग (1924, उपन्यास), अबरोधबासिनी (1931, व्यंग्य-रचनासंग्रह), कई कविताएं, कहानियां, अंग्रेजी और बंगला में कई लेख बेगम रुकैया रचनावली में संकलित है।

स्त्री-अधिकारों के लिए कार्य

मुस्लिम महिलाओं के शिक्षा के ही तरह, बेगम रुकैया का लेखन स्त्री-पुरुष असमानता पर उनके विचार इस प्रस्थानबिंदु पर आधारित रहा है कि किसी भी समाज में स्त्री-पुरुष की सहभागिता एक समान है। हम सामाज का आधा भाग हैं अतः यदि हम पीछे रह गयीं या कई कारणों से आगे नहीं आ सकीं तो समाज प्रगति कैसा करेगा? यदि किसी व्यक्ति की एक टांग काट दी जाए तो वह कितनी दूर जा पायेगा? पुरुषों और स्त्रियों के हित एक समान हैं। बेगम रुकैया का विचार उनके कई लेखनों में भी उभर कर सामने आता है। महिलाओं के निजी और सार्वजनिक जीवन के अलगाव को अपने लेखकीय कर्म का आधार बनाती हुई बेगम रुकैया स्वयं लिखती है - अलगाव पूरी तरह से खुला हुआ हरा जख्म नहीं है, जो दर्द देता रहता है। वह तो कार्बन मोनो आक्साइड गैस की तरह चुपके से जान ले लेता है।⁸ बेगम रुकैया की रचना 'द डीग्रेसन ऑफ वुमेन' जिसका अनुवाद बंगला से अंग्रेजी में किया गया है, में महिलाओं की सीमाबद्ध हालातों पर चर्च देखने को मिलती है। बेगम रुकैया लिखती है कि - अब तक कई वजहों से मानवता का एक हिस्सा (पुरुष) कई क्षेत्रों में आगे बढ़ता चला गया, जबकि दूसरा हिस्सा (महिलाएं) प्रगति को उस मुकाम तक नहीं पहुंच पाने की वजह से पुरुषों का साथी अथवा सहयोगी बनने के बजाए उसका गुलाम बन जाना है। स्त्री-पुरुष समानता का लक्ष्य तय करते हुए बेगम रुकैया लिखती है कि –मैं मर्दों के बराबर होने की बात कर रही हूं ताकि इस बात का अंदाजा लगाया जा सके कि हमें किस तरह की तरक्की चाहिए। हम उस तरह की समानता की बात करते हैं जो परिवार में लड़के और लड़कियों के बीच में होनी चाहिए। पुरुष तो समाज के बेटे हैं इसलिए हमें भी समाज की बेटी होनी चाहिए।⁹ हम ये नहीं कहते हमारे सिर पर वही टोपी चढ़ा दो जो आप लड़कियों के सिर पर चढ़ाते हैं। बल्कि हम तो यह कह रही हैं कि एक बच्ची के सिर पर जो परदा डाला जाता है उसको बनाने में भी उतनी ही फ्रिक होनी चाहिए जितना लड़के की टोपी को सजाने में की जाती है। बेगम रुकैया स्त्री-पुरुष समानता को पाने के लिए समाजीकरण की प्रक्रिया में भी समानता पर जोर देती है।

महिलाओं के लिए सम्मानपूर्ण जीवन की कल्पना अपनी बहुचर्चित रचना 'सुलताना ड्रीम्स' (सुलताना का सपना, 1908) में करती है। जो अंग्रेजी में लिखा गया था, जबकि रुकैया अधिकतर बंगला में लिखती थी। रुकैया का यह रचना इसलिए महत्वपूर्ण बन जाती है क्योंकि पुरुषवादी समाज में उनकी यह कल्पना सहज लकीर के साथ चलता है। इस रचना में रुकैया स्त्रियों के दुनिया की एक ऐसा रेखाचित्र खिंचती है, जिसमें पुरुषों को उन्हीं बंधनों में जकड़कर रखा जाता था, जैसे जनाने में महिलाओं का जीवन रहा था। रुकैया एक ऐसे महिला प्रधान देश की कल्पना करती हैं जिसमें देशभर पर महिलाएं शासन तथा समस्त सामाजिक मामलों को नियंत्रित करती हैं और पुरुषों को शिशुओं की देखभाल खाना बनाने और सब प्रकार के घरेलू कामकाज करने के लिए मर्दाना में रखा जाता है। इस रचना में रुकैया भारत में पुरुषों की विशिष्ट सुविधा संपन्न स्थिति पर आक्रमण करती है।

रुकैया बेगम अपनी रचना अवरोधबासिनी में व्यंग्य के शैली में उन घटनाओं को अभिव्यक्त करती है जिसे उन्होंने खुद देखा और भोगा भी था। इस रचना में उन्होंने अपने बचपन में जनाना में घटने वाली उन घटनाओं को अभिव्यक्त किया जो महिलाओं को नियम कायदों में सीमाबद्ध करती थी और महिलाओं के जीवन को कठिन बना देती थी। बेगम रुकैया व्यंग्य शैली में मुस्लिम महिलाओं के जीवन में पर्दे की बेबसी और पर्दे में महिलाओं की हकीकत को कलमबद्ध करती है। इसकी भूमिका में वो लिखती है –कई ऐतिहासिक और आंखन देखी सच्ची घटना के आधार पर हंसने-रुलाने वाली अवरोध बासिनी रची गई। अवरोध बासिनी में बेगम रुकैया मुस्लिम महिलाओं के अवरोध पर्दा प्रथा की आलोचना व्यंग्य शैली में ही नहीं करती है। बल्कि इसमें वह हर चीज शामिल है जो महिलाओं के निजी और सार्वजनिक जिंदगी को किसी खास दायरे में कैद करती है। बेगम रुकैया इन अवरोधों को इसलिए समझ सकी और महसूस किया क्योंकि वह खुद इन अवरोधों के बीच रही और उससे जद्दोजहद भी करती रही थी। मुस्लिम महिलाओं के निजी और सार्वजनिक जीवन की समस्याओं से अधिकांश लोग अनजान थे। 'बुर्का' लेख पर्दा व्यवस्था

की जुड़ी हुई ऐसी वास्तविक घटनाओं का जिक्र करती है जिससे लोग अनजान थे। बेगम रुकैया की अपनी काकी की मौत भी रेलगाड़ी से कुचल जाने के कारण हुई थी क्योंकि बुर्के के कारण वह मदद के लिए चिल्ला नहीं पाई थी। मुस्लिम महिलाओं के पर्दे पर पीड़ा पर उन्होंने सार्वजनिक रूप से काफी कुछ लिखा खासकर अपने स्कूल के शैक्षणिक संरचना में पर्दे पर सख्ती के कारण मुस्लिम लड़कियों के दिक्कतों पर।¹⁰

रुकैया बताती है कि मुस्लिम धार्मिक कानून कुरान और शरीयत में पर्दा प्रथा का कोई आधार नहीं है। 'हमारी अवनति' में बेगम रुकैया बताती है कि हमें पुरुषों के आगे सिर झुकाकर और परेशान होने की जरूरत नहीं है क्योंकि ये पुरुष धर्म के नाम पर अनावश्यक रूप से हमारे मालिक बन बैठे हैं। सख्त धार्मिक बंधनों के कारण महिलाओं के दमन के रूप सामने आते हैं। सती इसका सबसे बड़ा सबूत है। धर्म से मेरा मतलब धर्म द्वारा लगाये गए सामाजिक नियंत्रण से है।¹¹ सामाजिक मसलों पर बोलते हुए धर्म की चर्चा करना इसलिए जरूरी है क्योंकि धर्म ने महिलाओं को गुलामी के जंजीरों में अधिक मजबूती से जकड़ने का काम किया है। पुरुष धर्म के नाम पर महिलाओं पर वर्चस्व स्थापित करते हैं।

बेगम रुकैया नहीं मानती थी कि केवल पुरुषों के मानवतावादी सुधारों से महिलाएं समानता का अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगी। इसके लिए महिलाओं को संगठित होकर स्वयं संघर्ष करना होगा। यह इतना आसान और सहज नहीं होगा। वो लिखती है –मेरी बहनों! अपनी आंखों को मलो, नींद से जागो और संगठित हो जाओ। माताएं, ये बताएं कि वो जानवर नहीं हैं, बहने ये बताये कि वो मेज और कुर्सी की तरह कोई वस्तु नहीं हैं और लड़कियों तुम तिजोरियों में रखी गहने या जेवरात नहीं हो। हम सब मिलकर कहे कि हम दुनिया की आधी आबादी है और हम दुनिया के बेहतरी के लिए संगठित हो रही हैं। समानता के लक्ष्य को पाने के लिए महिलाओं को पुरुषों के समान ही अपना शक्ति का आधार निर्मित करना होगा। संगठित होकर ही महिलाएं अपने अधिकार और समानता के लिए संघर्ष कर सकती हैं। महिलाओं की इन्ही स्थिति को रुकैया अपने एकमात्र उपन्यास 'पद्मराग'(1924) में दिखाती है और यह बताती है कि

विवाह महिलाओं के जीवन का एकमात्र लक्ष्य नहीं है। इस उपन्यास में रुकैया औरतों पर जुल्मों की अनेक कहानियां बयान करती हैं, जो उपन्यास के नारी निकेतन में आश्रिता नारियों के जीवन कहानियों के माध्यम से अधिक मुखर होती है। उपन्यास में मुख्यपात्र सिद्धिका है जो पूरे उपन्यास में अपने बारे में कुछ भी नहीं बताती है। लतीफ नामक युवक, सिद्धिका से प्यार करने लगता है, तब यह रहस्य खुलता है कि लतीफ उसका पति था, जिसने उसे कभी देखा तक नहीं था, लतीफ के चाचा ने निकाह के लिए यह शर्त रख दी कि सिद्धिका को उसकी जायदाद का हिस्सा मिले उसके सगे भाई भी उससे छल करते हैं। कहानी के अंत में सारे घटनाक्रम जुड़ते हैं तो सिद्धिका लतीफ से निकाह करने से इंकार कर देती है। वो लतीफ से कहती है कि यदि उसने निकाह कर लिया तो समाज की अन्य महिलाएं समाज की कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाने वाली लड़कियों को उसका उदाहरण देकर उनको आगे बढ़ने से रोक देगी और मर्द मूंछों पर ताव देते अपनी चौधराहट सिद्ध करते हुए कहते फिरेगें....कितनी भी बगावत कर ले, अंत में औरतों को आना तो मर्द के अधीन ही पड़ता है। उपन्यास का अंत कमजोर लगने वाली केंद्रीय पात्र सिद्धिका का कंद उंचा कर देता है और सामाजिक मान्यताओं से संघर्ष करने वाली महिलाओं के लिए एक बेमिसाल नजीर पेश करता है। इस उपन्यास के माध्यम से बेगम रुकैया महिलाओं को संगठित करने का प्रयास करती हुई अभिव्यक्त होती है। 1924 में जब 'पद्मराग' का प्रकाशन हुआ उस देशकाल में कई महिला संगठन भी उभर कर सामने आ रहे थे और महिलाओं की समस्याओं को अधिक मुखर तरीके से अभिव्यक्त कर रहे थे। मसलन, इंडियन वूमेन एसोसिएशन, आल इंडिया मुस्लिम वूमेन एसोसिएशन। बेगम रुकैया ने मुस्लिम समुदाय में निर्धन मुस्लिमान बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने, उनके विवाह की व्यवस्था करने और मुस्लिम महिलाओं में आत्मचेतना विकसित करने के उद्देश्य से 'अंजुमने ख्वातीने इस्लाम' की नींव कलकत्ता में डाली।

मोतीचूर प्रथम खंड (1904) तथा द्वितीय खंड (1922) निबंधों में रुकैया बेगम का तर्क ठोस आधार पर

आधारित हैं। इन निबंधों में, बेगम रुकैया महिलाओं के स्थितियों का विभिन्न पक्षों से चर्चा करती है। बकौल रुकैया बेगम खुद लिखती है कि – धर्म के पुस्तकें आचरण-संहिताओं तथा पुरुषों द्वारा दिये गये निर्देशों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। पुरुष संतों द्वारा दी गई व्यवस्था, यदि महिला संतों द्वारा दी गयी होती तो एकदम उलट दी जाती। आगे वो लिखती है कि – पुरुषों ने हमें (महिलाओं को) अंधकार में रखने के लिए ही यह मान्यता फैलाई है कि धर्मग्रंथ ईश्वर का आदेश है। इन निबंधों में उन्होंने मुसलमान महिलाओं को बलपूर्वक उनके घरों की चाहरदीवारी के भीतर दारुण कैद में डाले जाने के विरुद्ध विवेकपूर्ण तर्क दिये। रुकैया लिखती है कि – गिरावट के अंतिम छोर पर भी पहुंचने के बादजुद गुलामी के खिलाफ हमारे उठ नहीं खड़े होने की सबसे अहम वजह यह है कि जब कभी किसी बहन ने ऐसा करने की कोशिश की, उसके खिलाफ मज़हब अथवा धर्मग्रंथों का इस्तेमाल हथियार के रूप में किया गया। मामला यहां तक पहुंच चुका है कि जिस पल एक लड़की जन्म लेती है, उसे जन्मजात गुलाम कह दिया जाता है। स्त्री-पुरुष के असमानता की समस्या को बेगम रुकैया मुस्लिम समाज तक ही नहीं अन्य संप्रदायों के विभिन्न धर्मग्रंथों को भी कटघरे में रखती है। निबंधों के इसी संग्रह में रुकैया महिलाओं के गहने प्रेम को उनकी दासता के कारण के रूप में देखती है। उन्होंने अपने लेख 'अलंकार गुलामी का प्रतीक'¹² में स्त्रियों को पहनाये जाने वाले आभूषणों की तुलना कुत्तों के गले में डाली गई जंजीरों से की। रुकैया के अनुसार- हम दासता के अभ्यस्त हो गये हैं तभी तो हम आभूषण को पसंद करते हैं जो गहने गुलामी की निशानी के अलावा और कुछ नहीं है। अगर किसी को गहने गुलामी की निशानी के बजाए सुंदरता को निखारने के तरीके लगते हैं, तो यह निंदनीय बात है। सुंदरता बढ़ाने की यह कोशिश ही क्या यह नहीं दिखाती है कि वह शख्स कितना असुरक्षित महसूस कर रहा है? पुरुष इस तरह के प्रतीकों को हार के प्रतीक के रूप में देखते हैं। आपसी बहस के दौरान पुरुष अक्सर कह देते हैं कि अगर मैं गलत सिद्ध हुआ तो हाथों में चूड़ियां पहन लूंगा। महिलाओं के प्रसाधन अगर उनके अपमान का

प्रतीक है तो वह महिलाओं के लिए प्रतिष्ठा और सम्मान का प्रतीक किस तरह बन सकते हैं।

औपनिवेशिक शासन के दौर में बेगम रुकैया का संघर्ष लिंग अधीनता के विषय पर आलोचनात्मक था। रुकैया बेगम ने राजनीतिक सहभागिता में मुस्लिम महिलाओं के अधीनता के प्रश्न को राजनीतिक प्रश्न के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। अपनी रचनाओं में उन्होंने औपनिवेशिक और महिलाओं की सामुदायिक अधीनता का पुरजोर विरोध किया है। लिंग अधीनता पर उनका लेखन उनकी राजनीतिक सहभागिता को प्रदर्शित करता है। उन्होंने औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध चल रहे स्वदेशी आंदोलन से खुद को अलग रखा क्योंकि स्वदेशी आंदोलन हिंदू आंदोलन के रूप में उभर कर सामने आ रहा था। राष्ट्रवादियों के स्वदेशी आंदोलन में उनकी सहमति हिंदू मातृभूमि और भारत माता की परिकल्पना से नहीं थी। बेगम रुकैया का मानना था कि हम केवल हिंदू या मुसलमान या पारसी या ईसाई या बंगाली, तमिल, मराठा या पंजाबी नहीं हैं वरन् हम भारतीय भी हैं। पहले हम भारतीय हैं, उसके बाद मुसलमान या सिख अथवा अन्य कुछ भी है। बंगाल में इस तरह के आंदोलन जोर-शोर से जरूर चला। परंतु, इसका असर समाज के सभी समुदायों पर एक तरह का नहीं था। इस मुहिम ने हिंदू महिलाओं की जिंदगी पर खुलकर चर्चा जरूर की थी। मुसलमान और मुसलमान महिलाएं पर्दे के ओट से ही मुआयना कर रही थी और चाहरदीवारी में ही सांस लेने के लिए जद्दोजेहद कर रही थी। मुस्लिम महिलाओं की सामाजिक स्थितियों पर बेगम रुकैया का जिस तरह का सक्रिय लेखन देखने को मिलता है उस तरह की राजनीतिक मोर्चों पर वो अधिक सक्रिय नहीं रही। महिलाओं के मताधिकार के प्रश्न पर वो कामनी राय के साथ संघर्षों में शामिल रही और लार्ड लिटन से हुई मुलाकात में हर चुनावों महिलाओं के मतदान के अधिकार का समर्थन किया।¹³

निष्कर्ष

रुकैया बेगम के तमाम लेखन में यह अभिव्यक्त होकर सामने आता है उनका लेखन मानवतावादी जो महिलाओं के स्थिति में बदलाव की चाह रखता था। उनका विश्वास था कि स्त्रियां समाज का आधा भाग हैं

अतः यदि हम पीछे छूट गयी तो समाज प्रगति कैसे करेगा? पुरुष और स्त्री के हित एक समान हैं। दोनों के लिए जीवन का लक्ष्य भी समान है। समाज में स्त्री-पुरुष असमानता के कारण की पहचान के रूप में रुकैया पुरुषों का स्वार्थपन और महिलाओं का पुरुषों के प्रति दास का भाव होना मानती है। बेगम रुकैया का सार्वजनिक जीवन और उनका लेखन बहुत हद तक स्पष्ट करता है कि उन्होंने उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के राष्ट्रवाद आंदोलन के दौर में मुस्लिम महिलाओं के लिए शिक्षा के आधार पर एक जमीन तैयार करने की कोशिश की। उन्होंने मुस्लिम महिलाओं की अस्तित्व को नई पहचान देने की कोशिश की। मुस्लिम महिला समुदाय में उनका प्रयास 'नारी-जागरण' का था। लैंगिक आधार पर असमानता को उन्होंने अपनी राजनीति का विषय बनाया और अपना अधिकांश लेखन लैंगिक असमानता और लैंगिक न्याय के पक्ष में किया। जिसके लिए वो अपने अंत तक संघर्ष करती रही। वैवाहिक साझेदारी और समानता की चर्चा उनकी लेखकीय जीवन के शुरुआती और अंतिम लेखों में भी देखने को मिलती है। उनके जीवन का आखरी अधूरा लेख का शीर्षक 'नारी अधिकार' था, जिसको लिखने के लिए वह अपनी मौत को नहीं टाल सकी।

बेगम रुकैया की नारीवादी आलोचना दो प्रस्थानबिंदु पर आधारित दिखती है। मौजूदा दौर में नारीवादी आंदोलन भी इन दो समस्याओं को महिलाओं के दायम स्थिति के कारण के रूप में पहचानता है। वह महिलाओं की अधीनता के कारण के रूप में पारिवारिक संस्था के कार्य करने के तरीके और धर्म जिस रूप में मानव समुदाय में स्थापित है; उसे मानती है। रुकैया परिवार संस्था को खत्म करने की बात नहीं करती। परंतु, परिवार के पुनर्रचना के लिए स्त्री-पुरुष समानता और वैवाहिक साझेदारी को जरूरी मानती है। वह धर्म का मानव समुदाय के बीच मौजूद होने का विरोध नहीं करती; परंतु धर्म जिस तरह महिलाओं के अधिकार और स्वतंत्रता को नियंत्रित करता है और महिलाओं के जीवन में अवरोध उत्पन्न करता है उसका पुरजोर विरोध करती है। वह पुरुषों से भी कहती है कि महिलाओं को समानता दे, उनके योगदान को स्वीकार करे और उनकी सहभागिता को

बराबरी का महत्व दें। महिलाओं के लिए उनकी आवाज थी- “जागो”!

संदर्भ:

1. मूल रूप से मोतीचूर के पहले खंड में प्रकाशित
2. वही
3. वही
4. गेल मिनो, 'पर्दा प्रोग्रेस : द बीगिनिंग ऑफ स्कूल एजुकेशन फॉर इंडियन मुस्लिम विमेन्स इनडिविजुयल्स एंड आडियल्स इन मॉडर्न इंडिया, संपादन: जे.पी.शर्मा; कलकत्ता, फर्मा के.एल. मुखोपाध्याय, 1982, पृष्ठ 76-97
5. मूल अंग्रेजी में अनरीज़नेबल
6. वही
7. मूल अंग्रेजी में डल हैड(ठप्प दिमाग) से।
8. रोशन जहां, इनसाइड सेक्यूलर, पृष्ठ 53-3
9. हमारी अवनति लेख का हिस्सा
10. बेगम रुकैया पर उपलब्ध सामग्री के स्रोतों में शामिल हैं: इनसाइड सेक्यूलर, अवरोधवासिनी: मूल रचनाकार बेगम रुकैया, अनुवाद व संपादन रोशन जहां (ढांका, बंगलादेश, बीआरसी प्रिंटर्स, 1981)
11. आवर डीग्रेडेशन (हमारी अवनति) का पैराग्राफ
12. मूलरूप अंग्रेजी में “बेजेज़ ऑफ स्लेवरी”(गुलामी के तगमे)। रुकैया की टिप्पणी: एक खास शम्स-उल-उलेमा (जकाउद्दीन) का कहना है, “नथनी असल में नाक में रस्सी डालने का ही एक संशोधित रूप है।”
13. वीमेन्स कांफ्रेंस में यह प्रस्ताव हुआ था कि महिलाओं को उनकी बेड़ियों से मुक्ति दिलाने के लिए मताधिकार उनका पहला राजनीतिक अधिकार का प्रयोग होगा।